कैम्पेन फॉर सर्वाइवल एंड डिग्निटी (सीएसडी), ओडिशा

राज्य संयोजक : श्री गोपीनाथ मांझी
जयगुड़िया, पो. बंजारी,
वाया – बेलपहाड़, ज़िला – झारसुगुड़ा,
ओडिशा, 9937118716,9438013095,
ईमेल :csdorissa@gmail.com

राष्ट्रीय संयोजक मंडल तरफ़ से : प्रदीप प्रभु,
3,येज़देह बेहराम, काटी,
मलयन, दहानू रोड –401602

प्रति,
श्री संदीप शर्मा, आईएफ़एस
वन उपमहानिरीक्षक,
पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय (एमओईएफ़सीसी),
इंदिरा पर्यावरण भवन, अलीगंज, जोरबाग़ रोड,
नई दिल्ली–110003

25अक्टूबर**2021**

विषय:वन संरक्षण अधिनियम**, 1980** में संशोधन हेतु प्रस्तावित जन परामर्श पत्र पर टिप्पणियाँ

कैम्पेन फ़ॉर सर्वाइवल एंड डिग्निटी
(CSD), ओडिशा की ओर से अभिवादन!

हम अपना परिचय देते हुए आपको बताना चाहेंगे कि कैम्पेन फ़ॉर सर्वाइवल एंड डिग्निटी (सीएसडी) 18 राज्यों के आदिवासियों और जंगलवासियों के संगठनों का राष्ट्रीय मंच है जो अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 का प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सुरु से ही प्रयासरत हे । राष्ट्रीय अभियान के तहत सीएसडी की ओडिशा इकाई राज्य भर के जंगलवासियों से सीधा संपर्क क़ायम करते हुए ज़मीनी स्तर पर इसके बेहतर क्रियान्वयन के लिए अभियान चलाया है। इसके लिए उसके सदस्यों ने स्थानीय स्तर से लेकर राज्य स्तर तक अधिनियम की मूल भावना के अनुरूप प्रक्रिया का सक्रिय समर्थन किया है। । इस संदर्भ में पारिस्थितिकीय मुद्दों पर ध्यान आकर्षित किया है जो जंगलवासी समुदायों का आजीविका की ज़रूरतों को सुनिश्चित करने के साथ-साथ जंगलों की जैवविविधता के संरक्षण के लिए भी निहायत ज़रूरी है। साथ ही हम मंत्रालयों और सरकारी विभागों के साथ मिल कर, वन संरक्षण के लिए लोक – प्रशासन का ढांचा तथा अन्य नीतिगत मुद्दों पर सुझाव देते रहे हैं।

इस पृष्ठभूमि से ओडिशा सीएसडी, वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980 में प्रस्तावित संशोधनों के बारे में जारी परामर्श परिपत्र पर जन-चर्चा आयोजन किया जिसमें विभिन्न जन – संगठनों, शोधकर्ता, अकादमिक व्यक्ति, नागरिक समाज के सदस्य, ग्रामीण समुदाय और जंगलों की संरक्षण, पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन, भूमि अधिकार, सामुदायिक वन - संसाधनों का प्रबंधन, जनजाति क्षेत्रों में कार्यरत कार्यकर्ताओं और समूहों शामिल हुए। इन सारे चर्चाओं का निष्कर्ष "वन संरक्षण अधिनियम, 1980 का प्रस्तावित संशोधनों पर टिप्पणियाँ और सिफ़ारिशें" के रूप में संकलित किया गया है।

हमारा स्पष्ट मानना है की "वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980 में प्रस्तावित संशोधनों के लिए जारी परामर्श परिपत्र" (फ़ाइल नं. एफ़सी -11/61/2021- एफ़सी दिनांक 02 अक्टूबर 2021) को पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा वापस ले लेना चाहिए। इसके बदले मंत्रालय को हमारा देश के प्रचलित क़ानूनों को कार्यान्वयन करने में ज्यादा प्रतिबधत्ता दिखानी चाहिए, प्रमुखता से अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पारंपरिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम के प्रति। वन की सुरक्षा, संरक्षण तथा वन-भूमि का किसी गैर-वानिकी कार्य के लिए डाइवरसन संवंधित फ़ैसला लेने का अधिकार ग्राम सभाओं पर छोड़ देना चाहिए । इसी बात को पर्यावरण मंत्रालय द्वारा संशोधनों के औचित्य के संदर्भ में सुझाए गए 14 प्रस्तावों के परिप्रेक्ष्य में नीचे विस्तार से वताया गया है।

बिंदु **1** सर्वोच्च न्यायालय द्वारा टी.एन. गोदवर्मन तिरुमूलपाद बनाम भारत संघ व अन्य के मामले में दायर याचिका नं 202/1995 पर 12-12-1996 के फ़ैसले के ज़रिए जंगल की परिभाषा को व्याक्ष्या किए जाने से पैदा होनेवाली समस्या से संबंधित है। इसके कारण वन संरक्षण क़ानून द्वारा "अधिसूचित " वन-भूमि से बाहर की ज़मीन पर भी लागू होने लगा। नतीजतन, निजी व्यक्ति तथा संस्थाओं द्वारा असंतोष ज़ाहिर करते हुए उसका प्रतिरोध करने लगे क्योंकि ऐसी ज़मीन ग़ैर-वानिकी उपयोग केलिए कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा था । लिहाज़ा यह ज़रूरी है कि वन संरक्षण क़ानून का दायरा को पुनः व्याख्या किया जाए।

आपत्ति:प्रस्ताव की असली मंशा है वन संरक्षण क़ानून और वन अधिकार क़ानून के दायरा को अस्पष्ट एवं मनमानी तरीके से सिमित करना ।इसमें अधिसूचित वनों के बाहर की व्यापक वन भूमि, तरह-तरह की ग़ैर-वानिकी कार्यों में लिए गए वन-भूमि तथा अधिसूचित वनों के भीतर के कतिपय ज़मीन को प्रचलित कानून के दायरा से बाहर निकालना ही एकमात्र मकसद हे । ऐसा इसलिए सुझाया जा रहा है ताकि वन -खण्डों को राजकीय एजेंसियों और निजी क्षेत्र

द्वारा भूमि उपयाग को बदल कर ग़ैर-विनिकी कार्यों के लिए आसानी से अनुमति दी जा पायेगी ।

(i) जबकि वन अधिकार(मान्यता) क़ानून में "वन भूमि" को पहले ही स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जा चुका है कि वन भूमि का मतलब है ऐसी कोई भूमि जो अवर्गीकृत जंगलों के साथ-साथ असीमान्कित जंगलों, मौजूदा या समझेगए (डीम्ड) जंगल, आरक्षित जंगल, सरंक्षित जंगल,अभयारण्य, राष्ट्रीय पार्क आदि । वन अधिकार क़ानून इन सभी तरह के जंगलों में अनुसूचित जनजातियों और अन्य परंपरागत जंगलवासियों के हक़ों को स्वीकार करता है और उन्हें इन पर अधिकार देता है। वह ग्राम सभाओं को सामुदायिक वन संसाधन के रूप में वनों पर उनका हक़ तय करने और उनके प्रशासन और प्रबंधन का अधिकार देता है। आजीविका, सामाजिक ओर सांस्कृतिक ज़रूरतों के लिए जारी गतिविधियों को मान्यता देता है और ग्राम सभाओं को वन्य -जीव एवं जैवविविधता की सुरक्षा और संरक्षा का ज़िम्मा देता है। साथ ही, इन वन अधिकारों को वन संरक्षण क़ानून के क्रियान्वयन के दायरा से पहले ही बाहर रखा गया है। वन भूमि और चंद गतिविधियों को वन संरक्षण क़ानून की क्रियान्वयन के दायरा से स्वतंत्र करने की आड़ में वन संरक्षण क़ानून का दायरा में भारी कटौती करने और उसे ज़्यादा सीमित करने की कोशिश की जा रही है जिस से वन अधिकार क़ानून और ग्राम सभाओं का अधिकार क्षेत्र को सीमित किया जायेगा । इसके ज़रिए पर्यावरण मंत्रालय की कोशिश है कि वह एक तरफ़ वन अधिकार क़ानून के तहत ग्राम सभाओं को दिए गए नियामक अधिकारों को समाप्त कर देगा और दूसरी तरफ़ वन भूमि का ग़ैर-वानिकी इस्तेमाल केलिए आसान बना देगा। साथ ही , अधिसूचित जंगलों के बाहर की वन भूमि को वन संरक्षण क़ानून के दायरा से बाहर निकाल देगा। पर्यावरण मंत्रालय की नज़र में इसी वजह से लोग इस भूमि पर किसी तरह का पेड़-पौधा लगाने से बचते हैं। जबकि वन अधिकार क़ानून के तहत ग्राम सभाओं के अधिकार क्षेत्र से बाहर हो जाने से वन भूमि का ग़ैर-वानिकी गतिविधियों के लिए इस्तेमाल में तेज़ी आएगी, जिससे सुरक्षा और संरक्षण के प्रयासों में कमी आएगी। इससे सबसे ज़्यादा फ़ायदा निजी क्षेत्र को ही होगा।

(ii) इसके अलावा, इस तरह की भूमि का बड़ा हिस्सा अनुसूचित क्षेत्रों में अवस्थित है एवं भूमि व अन्य नैसर्गिक संसाधनों के संदर्भ में पंचायत उपवंध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम, 1996 ग्राम सभा का अधिकार को मान्य किया है।

(iii) वनों संवंधित विषय को अब वन अधिकार रहित वनों एवं वन अधिकारों के तहत मान्य किये गए वन – भूमि के रूप में चिन्हांकित कर दिया गया

है और कार्य आवंटन नियमावली, 1960 में संशोधन के ज़रिए उन्हें क्रमशः पर्यावरण मंत्रालय और जनजातीय कार्य मंत्रालय के ज़िम्मे कर दिया गया है।

बिंदु **2** यह प्रस्तावित करता है कि जिस ज़मीन का अधिग्रहण रेलवे, एनएचएआई, पीडब्ल्यूडी-जैसी एजेंसियों द्वारा 1980 के पहले कर लिया गया था जो अब तक बिना कोई इस्तेमाल से पड़ी हैं और जिन पर पेड़-पौधे या जंगल उग आए हैं, अब वे वन संरक्षण क़ानून के दायरा में आता हैं, उन पर छूट दी जाएगी ताकि वे इस ज़मीन का इस्तेमाल ग़ैर-वानिकी उद्देश्यों, जैसा कि परियोजना का विस्तार या अन्य उद्देश्यों के लिए कर सकें। इसके लिए उन्हें वन संरक्षण क़ानून के तहत अनुमति लेने के प्रावधानों का अनुपालन न करना पड़े।

आपत्ति :राजकीय एजेंसियों द्वारा भूमि अधिग्रहण अक्सर विस्थापन पैदा करता है। लोग अपनी ज़मीन खो देते हैं और ग़रीब व हाशिए पर रहनेवाले समुदाय की आजीविका छिन जाती है। ऐसी ज़मीन का बड़ा हिस्सा अधिग्रहण करनेवाली एजेंसी को पास सालों तक बिना किसी इस्तेमाल के पड़ा रहता है। इस भयंकर अन्याय को स्वीकार करते हुए वन अधिकार क़ानून की धारा 4(8) में प्रावधान किया गया कि जिन सरकारी एजेंसियों ने उनकी ज़मीन का अधिग्रहण किया है और ज़मीन का हरजाना दिए बग़ैर उन्हें विस्थापित कर दिया गया, ऐसे में अगर अधिग्रहित ज़मीन का इस्तेमाल पाँच साल के भीतर तय उद्देश्य के लिए नहीं किया गया हो उस ज़मीन को उन एजेंसियों को अनुसूचित जनजातियों और अन्य पारंपरिक जंगलवासी समुदायों को वापस कर देना चाहिए और उन पर उनके अधिकारों को बहाल कर देना चाहिए। प्रस्तावित संशोधन से इस्तेमाल नहीं की गई ज़मीन को मूल अधिकारियों को वापस कर देने की बात को खारिज कर देता है। इस प्रकार क़ानून का वह प्रावधान जो इस अन्याय को समाप्त करने की बात करता है निष्प्रभावी हो जाता है। अलबत्ता, उन एजेंसियों को उपयोग में नहीं ली गई ज़मीन पर क़ब्ज़ा बहाल रखने की इजाज़त देगा। जबकि उन एजेंसियों द्वारा इस्तेमाल नहीं की जा रही ज़मीन को समुदायों को वापस लौटा देना चाहिए। इसके अलावा,

(i) भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता अधिकार अधिनियम, 2013 (एलएआरआर) के मुताबिक यदि किसी भूमि के अधिग्रहण और उस पर क़ब्ज़ा हो जाने के बाद पाँच सालों तक वह बिना इस्तेमाल के पड़ी रहती है, तो उसे धारा 101 के अनुसार मूल स्वामियों को लौटा दिया जाना चाहिए।

बिंदु **3** समझेगए जंगलों पर वन संरक्षण क़ानून के प्रावधान लागू होते हैं। उनके लिए ज़रूरी है कि सरकारी जंगलों के बाहर की ज़मीन तलाशी जाए ताकि i)

राष्ट्रीय वन नीति, 1952 के अनुरूप एक-तिहाई ज़मीन को वनाच्छादित किया जा सके, ii)2030 तक अतिरिक्त 2.5 से 3.0 बिलियन टन कार्बनडाइऑक्साइड उत्सर्जन के लिए कार्बन सिंक तैयार करने के लक्ष्य को हासिल किया जा सके, iii) लकड़ी और लकड़ी से बननेवाली चीज़ों के आयात से होनेवाली लगभग 45 हज़ार करोड़ रुपए की विदेशी मुद्रा की हानि को रोकने के मक़सद से आवश्यक लकड़ी का वृक्षारोपण को बढ़ावा दिया जा सके। निजी और ग़ैर-वन भूमि पर ऐसी बाग़वानी को वन संरक्षण क़ानून के दायरे से बाहर रखने का प्रस्ताव दिया गया है।

आपत्ति :किसानों और आदिवासी समुदायों द्वारा इस्तेमाल की जानेवाली ज़मीन और सामुदायिक ज़मीन पर बड़े पैमाने पर एक ही तरह के पेड़ लगाने तथा व्यावसायिक बागान हेतु परियोजनाओं को चालू किया जाएगा। यह उनके अधिकारों और उनकी आजीविका पर असर डालेगा और इसी के साथ जैवविविधता का भी नष्ट होगा । केंद्र सरकार और पर्यावरण मंत्रालय राज्यों पर दबाव डाल रहे हैं कि वे सभी तरह की ज़मीन (रेवेन्यू रिकॉर्ड में दर्ज वन भूमि, ग़ैर-वन भूमि, सामुदायिक भूमि और निजी ज़मीन) की पहचान करें और क्षतिपूर्ति वनीकरण परियोजनाओं के तहत और जलवायु परिवर्तन कार्यक्रम के मातहत अतिरिक्त कार्बन सोख्ता तैयार करने की योजनाओं के तहत वृक्षारोपण के लिए बड़े पैमाने पर उनका इस्तेमाल करें। इन वनीकरण परियोजनाओं का आदिवासी और जंगलवासी समुदाय बड़े पैमाने पर विरोध करते रहे हैं क्योंकि ये परियोजनाएँ उनके हक़ों को प्रभावित करती हैं और बहुद्देशीय जंगलों और पेड़-पौधों की जगह पारिस्थितिकी के लिहाज़ से विनाशकारी एक ही तरह के वृक्षारोपण को बढ़ावा देने के ज़रिए जैवविविधता को नष्ट करती हैं। इसके अलावा,

(i) इन परियोजनाओं के कारण एजेंसियों द्वारा ज़मीन पर क़ब्ज़े की प्रवृत्ति बढ़ी है और वे भ्रष्टाचार का गढ़ बन गई हैं।
() पाम आयल और बायोफ़ुएल आधारित वृक्षारोपण -जैसी केंद्र सरकार कार्यक्रमों के कारण भी ऐसे ही दुश्चिंताएँ बढ़ती हैं।

केंद्र सरकार भी निजी क्षेत्र की केपनियों को बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण परियोजनाएँ शुरू करने के लिए प्रोत्साहित कर रही है। इन्हें वन संरक्षण क़ानून के दायरे से बाहर रखने से सरकारी एजेंसियों और निजी क्षंत्र को सरकारी प्रोत्साहन / कोष का इस्तेमाल करते हुए विशालकाय व्यावसायिक और एकरंगी वानिकी बनाने की छूट मिल जाती है। वे बाद में इसकी कटाई कर सकते हैं और ग्राम सभा की इजाज़त लिए बग़ैर धड़ल्ले से भूमि उपयोग को बदल कर उसका इस्तेमाल अन्य कार्यों के लिए कर सकते हैं। इससे समुदायों के हक़ों का उल्लंघन होगा, जंगल और जैवविविधता का नाश होगा और ज़मीन पर क़ब्ज़ा बढ़ेगा।

बिंदु**4**उस ज़मीन की ओर इशारा करता है जो रेवेन्यू और वन रिकॉर्ड दोनों में दर्ज हैं जिससे ग़लत व्याख्या और मुक़दमेबाज़ी का ख़तरा बन जाता है। संशोधन यह प्रस्तावित करता है कि जिस ज़मीन को 12-12-1996 के बाद वन भूमि के रूप में दर्ज किया गया है उसे सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के आलोक में वन संरक्षण क़ानून के दायरे से बाहर कर दिया जाए ताकि वानिकी गतिविधियों (कृषिवानिकी के साथ-साथ अन्य तरह के वृक्षारोपण) को बढ़ावा मिल सके।

आपत्ति : क़रीबन 400 लाख हेक्टेयर वन भूमि भारत के 1,77,000 गाँवों के रेवेन्यू रिकॉर्ड में भी दर्ज हैं। इन रेवेन्यू जंगलों में वैसे निस्तारी जंगल भी शामिल हैं जिनका इस्तेमाल समुदाय करते आ रहे हैं, जो समुदाय संरक्षित जंगल हैं, आदि-आदि। वन अधिकार क़ानून ऐसे सभी जंगलों पर समुदायों के हक़ो को स्वीकार करता है और इनमें "विवादितभूमि पर हक़" भी शामिल है (धारा 3(1)(च)। इन ज़मीनों को, सम्पूर्ण या आंशिक रूप से, राज्य वन विभाग ने वनों के रूप में दर्ज किया हुआ है। ऐसा सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के आलोक में किया गया है। वन अधिकार क़ानून ऐसे सभी जंगलों का प्रशासन व नियंत्रण ग्राम सभाओं को देता है। इसलिए जिन जंगलों को वन विभाग ने 1996 के बाद जंगल के रूप में दर्ज किया है वह जंगल वन संरक्षण क़ानून के दायरा से बाहर करने का प्रस्ताव करने से वे ग्राम सभा के अधिकार क्षेत्र से बाहर हो जायेगा और मनमाने ढंग से ज़मीन का इस्तेमाल करने केलिए छूट मिल जाएगी । यह वन अधिकार क़ानून, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पारंपरिक जंगलवासियों के वैधानिक अधिकारों और ग्राम सभा के प्राधिकार का उल्लंघन है। इससे बड़े पैमाने पर विवाद उत्पन्न होगा, देश भर में विभिन्न राजकीय एजेंसियाँ और ग्राम सभाएँ और वन अधिकार क़ानून के तहत अधिकारप्राप्त लोग एक-दूसरे ख़िलाफ़ खड़े हो जाएँगे।

बिंदु **2, 5, 7, 9, 11** और **14** निम्नलिखित मामलों में वन भूमि का उपयोग को बदलने की छूट का प्रस्ताव देता है –i) जिस ज़मीन का रेलवे, एनएचएआई, पीडब्ल्यूडी-जैसी एजेंसियां 1980 के पहले अधिग्रहण किया हो व जो बिना उपयोग से पड़ी हे और जिस पर पेड़-पौधे या जंगल उग आए हैं , ii) पेड़ों की कतार, सड़कों के किनारे और रेल लाइनों के पास विकसित जन सुविधाएँ, बसाहटें, iii) अंतरराष्ट्रीय सीमा क्षेत्र में रणनीतिक और सुरक्षात्मक दृष्टि से विकसित राष्ट्रीय महत्व के ढाँचागत निर्माण, iv)जंगलों और वन्य-जीवों के संरक्षण के लिए संचालित ग़ैर-वानिकी गतिविधियाँ, जैसा कि चिड़ियाघरों,सफारियां का निर्माण या वन प्रशिक्षण आदि, v)वन भूमि के नीचे तेल और कुदरती गैस की खोज या उत्सर्जन के लिए एक्सटेंडेड रीच ड्रिलिंग-जैसी तकनीकों का इस्तेमाल, और vi)वन भूमि का जाँच-पड़ताल और सर्वेक्षण।

आपत्ति :ये सारी प्रस्तावित छूटें वन अधिकार क़ानून का सीधा उल्लंघन हैं। ऐसी ही कई और रियायतें पर्यावरण मंत्रालय ने पहले से भी दी हुई हैं। यह प्रस्ताव उसी सिलसिले को जारी रखता है। ये रियायतें ग़ैर-क़ानूनी ढंग से सरकारी और निजी एजेंसियों को वन भूमि का उपयोग बदलने की छूट दे देता हैं। उदाहरण के लिए, पर्यावरण मंत्रालय ने ग़ैर-क़ानूनी ढंग से इन मामलों में वन भूमि के इस्तेमाल को बदलने की छूट दी हुई है –i) परियोजना विस्तार, ii) खनिज की खोज, iii) जिन जंगलों में "आदिवासी आबादी" नहीं हौ, iv) खनन लीज देने के मामले, v) भूमि बैंक का निर्माण, vi) स्टेज 1 का क्लीयरेंस देने में, और vii) जंगल का अस्थाई इस्तेमाल । इसके अलावा, जब पहले से दी गई रियायतें वन संरक्षण क़ानून और वन अधिकार क़ानून दोनों का असल में उल्लंघन करती थीं, ऐसे में वन संरक्षण क़ानून के तहत प्रस्तावित छूट वन अधिकार क़ानून का उल्लंघन में वृद्धि करेगी।

(i) वन अधिकार क़ानून सभी तरह के वन इलाक़ों के ऊपर समुदायों और ग्राम सभाओं का हक़ स्थापित करता है और उम्मीद करता है कि अधिकारी वन अधिकार क़ानून का पालन करेंगे और वन भूमि के इस्तेमाल को बदलने के पहले ग्राम सभाओं से मंज़ूरी लेंगे। नियामगिरी मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने भी यही कहा था कि वन अधिकार क़ानून का अनुपालन क़ानूनन ज़रूरी है और वन भूमि के इस्तेमाल को बदलने के पहले ग्राम सभाओं की सहमति अनिवार्य हे ।
(ii) जनजातीय कार्य मंत्रालय ने सभी राज्य सरकारों को स्पष्टीकरण भेजा है कि वन अधिकार क़ानून सभी वन भूमि पर "बिना किसी रियायत" से लागू होता है और ग्राम सभा से मंज़ूरी लेना अनिवार्य है।

(iii) प्रस्तावित रियायतें सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों का उल्लंघन हैं।

बिंदु **6**यह प्रस्तावित करता है कि कुछ कुदरती जंगलों को ख़ास समय के लिए वैसा ही बने रहने दिया जाए।

आपत्ति :यह प्रस्तावित संशोधनो के ज़रिए संरक्षण का गैर-जिम्मेदाराना प्रयास है जबकि असली मंशा है अधिसूचित जंगलों के भीतर और बाहर दोनों ही जगह ग़ैर-वानिकी गतिविधियों के माध्यम से जंगलों के विनाश को उचित ठहराया जा सके। पहले भी खनन परियोजनाओं के मामले में "अनुमति के क्षेत्र एवं निषिद्ध क्षेत्र" बनाने का प्रस्ताव दिया गया था जो पूरी तरह नाकाम रहा है । साथ ही,

(i) तथाकथित नया जंगलों की घोषणा का प्रस्ताव राष्ट्रीय पार्कों, वन्यजीव अभयारण्यों, वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 के तहत टाइगर रिजर्व आदि के ज़रिए संरक्षित क्षेत्रों के निर्माण से कतई अलग नहीं है। इन सभी

की मौलिकता बनाए रखी जानी थी जब तक वन संरक्षण क़ानून के तहत उनका स्वरूप बदल नहीं दिया जाता। यह प्रस्ताव भी जंगलों का एक नया संवर्ग बना देगा जहाँ लोगों के हक़ों पर रोक लगा दी जाएगी।

(ii) वन अधिकार क़ानून जंगलों का प्रशासन पर पाबंदी और नियंत्रण के औपनिवेशिक अधिकारों को अस्वीकार करता है, वन्यजीव संरक्षण क़ानून और वन संरक्षण क़ानून-जैसै वन क़ानूनों में चाहे जो लिखा हो। वन अधिकार क़ानून के तहत इन संरक्षित क्षेत्रों में भी जंगलों,वन्यजीवों और जैवविविधता को सुरक्षा, संरक्षण और प्रबंध करने का अधिकार ग्राम सभाओं को है। प्रस्तावित छूट जंगलों के सभी हिस्सों पर किसी-न-किसी तरह से एकक्षत्र नियंत्रण क़ायम करने केलिए छद्म प्रयास है।

बिंदु **8**में खनन पट्टों से संबंधित उपधारा 2(ii) को ख़त्म करने का प्रस्ताव किया गया है। यह उन्हें जंगलों का इस्तेमाल को बदलने की प्रक्रिया के तहत लाने का प्रयास है।

आपत्ति :वन संरक्षण क़ानून की दोनों धाराओं 2(ii) और 2(iii)के तहत जंगलों के स्वरूप में बदलाव को मामलों में क़ानूनों का भारी पैमाने पर उल्लंघन और अनियमितता देखी गयी है। धारा 2(ii) के तहत जंगलों के स्वरूप को बदलने के ज़्यादातर प्रस्ताव वन संरक्षण क़ानून और वन अधिकार क़ानून के अनुपालन के प्रावधानों का उल्लंघन करते हैं। ज़्यादातर मामलों में वन अधिकार क़ानून के लागू होने के बाद भी ग्राम सभाओं से ज़रूरी मंज़ूरी नहीं ली जाती, न ही मंज़ूरी में क़ानूनी प्रक्रिया का अनुपालन किया जाता है, अक्सर नकली दस्तावेज़ और अधिकारियों के नकली प्रमाणों के प्रयोग किया जाता है।जंगलों को पट्टे पर दिए जाने और पट्टे की अवधि बढ़ाए जाने के मामलों में भी होता है जिन्हें ज़्यादा आसानी से किया जाता है। धारा 2(iii) को ख़त्म कर देने और धारा 2(ii) को वन अधिकार क़ानून मातहत लाए बग़ैर पट्टे की प्रक्रिया को धारा 2(ii) के तहत लाया जाना जंगलों के स्वरूप को बदलने को क़रीबी निगरानी के मातहत लाए जाने का दिखावा भर है। लिहाज़ा वन संरक्षण क़ानून की धारा 2 के तहत वन अधिकार क़ानून के अनुपालन को क़ानूनन अनिवार्य बनाना ज़रूरी है। वन संरक्षण क़ानून और वन अधिकार क़ानून को एक-दूसरे के संगत बनाने के लिए ऐसा करना ज़रूरी है क्योंकि बाद में पारित वन अधिकार क़ानून दूसरे पर भी क़ानूनन प्रभावी है।

बिंदु **10** उन निजी व्यक्तियों के कतिपय शिकायतों से संबंधित है जिनकी ज़मीन किसी राज्य के निजी वन अधिनियम के मातहत आती है और इसलिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 12-12-1996 के फ़ैसले में दी गई “वन” की परिभाषा की तहत आती है। अब प्रस्तावित किया गया है कि ऐसे भूस्वामियों को इजाज़त दी जाए

कि वे ऐसी वन भूमि का इस्तेमाल उचित उद्देश्य से निर्माण के लिए करने के लिए स्वतंत्र हैं। ऐसे निर्माणों में वन सुरक्षा उपायों और 250 वर्गमीटर भूमि पर रिहाइशी भवन शामिल हैं। ऐसी छूट एक बार ही मिलेगी। इस प्रस्ताव को घोषित वनों के बाहर की वन भूमि पर वन संरक्षण क़ानून से मिली छूट के साथ मिलाकर देखना होगा।

आपत्ति :यह प्रस्ताव असल में प्रासंगिक राज्य क़ानून को निष्प्रभावी बनाता है। चूँकि वन अधिकार क़ानून सभी तरह की वन भूमि पर लागू होता है, इसलिए ग्राम सभा के भीतर आनेवाली ऐसी निजी भूमि भी ग्राम सभा के भौगोलिक अधिकार क्षेत्र में आती है। अभी तक राज्य क़ानूनों में ऐसा संशोधन नहीं किया गया है कि वन अधिकार क़ानून का अनुपालन अनिवार्य हो जाए। इन राज्यों की नियामक संस्थाएँ वन अधिकार क़ानून को नज़रअंदाज़ करना जारी रखे हुए हैं और वन अधिकार क़ानून का उल्लंघन करते रहते हैं। ग्राम सभाओं के अधिकारों को मान्यता दिए बिना ही जहाँ ज़रूरी हो और निर्माण कार्य समेत भूमि का स्वरूप बदलने में ग्राम सभा की मंज़ूरी के प्रावधान को प्रस्तावित संशोधन में छूट देना ग्राम सभाओं के क़ानूनी अधिकार को ख़त्म करने और पलट देने का ही एक अन्य प्रयास है। जहाँ मौजूदा एकाधिकारवादी वन संरक्षण क़ानून की नियंत्रणकारी व्यवस्था को पूरी तरह समाप्त करने की बात है, वहीं उसकी जगह घोषित जंगलों के बाहर की वन भूमि के लिए न्यायकारी जनतांत्रिक संरक्षण व्यवस्था बनानी होगी, जो वन अधिकार क़ानून के रूप में पहले से ही मौजूद है। इसकी बुनियादी शर्त है कि निर्माण समेत भूमि के इस्तेमाल में सभी बदलावों को ग्राम सभा की मंज़ूरी लेनी होगी ताकि ग्राम सभा ऐसी सभी गतिविधियों को नियमित कर सके जो वनों, वन्यजीवों और जैवविविधता की सुरक्षा और संरक्षा के लिए ख़तरा बन सकती हैं।

बिंदु **12**दोहरा प्रतिपूरक शुल्क लगाए जाने पर रोक लगाता है जहाँ ऐसा शुल्क बेहतर इकोसिस्टम सेवा बनाने के लिए भूमि का इस्तेमाल ग़ैर-वानिकी गतिविधियों के लिए शुरू हो जाता है, वहाँ लगाया जाता है।

आपत्ति :बुनियादी तौर पर प्रतिपूरक शुल्क लगाने के पीछे दिए जानेवाले तर्क के अनुसार ऐसा करना इसलिए ज़रूरी है कि इकोसिस्टम सेवाओंको होनेवालेनुकसान की भरपाई की जा सके। इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। इसके अलावा दोहरे शुल्क पर रोक से सिर्फ़ इतना होगा कि वह उपयोगकर्ता एजेंसी के लिए ज़्यादा मँहगा नहीं पड़ेगा। शुल्क की राशि में बढ़ोतरी पर रोक का कोई आधार नहीं होने से सिर्फ़ उपयोगकर्ता एजेंसी को फ़ायदा होगा, चाहे वह सार्वजनिक हो या निजी और उसे काम करने में सहूलियत होगी।

बिंदु **13** में उल्लंघनों के लिए साधारण कारावास और दंडात्मक जुरमाने का प्रस्ताव दिया गया है। यह वन संरक्षण क़ानून में पहले से जो दंडात्मक व्यवस्था है उसके अतिरिक्त है।

आपत्ति:वन अधिकार क़ानून के प्रावधानों के अनुसार हर उल्लंघन वन अधिकार क़ानून की धारा 8 के तहत अपराध है जिसके लिए ग्राम सभा वन अधिकार क़ानून की धारा 8 के तहत मुख्य सचिव को नोटिस जारी कर उल्लंघनकारी के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने का आग्रह कर सकती है। ऐसे सभी उल्लंघन सन् 2016 में किए गए एक संशोधन के ज़रिए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 का भी उल्लंघन क़रार दिए गए। वनों को स्वरूप को बदलने के क्रम में वन अधिकार क़ानून के अनुपालन से संबंधित वन संरक्षण क़ानून के प्रावधानों के उल्लंघन इन क़ानूनों के तहत उल्लंघन की श्रेणी में आते हैं। प्रस्तावित संशोधन क़ानून को इस तरह नहीं बदलता कि वन अधिकार क़ानून के अनुपालन से संबंधित वन संरक्षण क़ानून के उल्लंघन वन संरक्षण क़ानून के तहत अपराध क़रार दिए जाएँ और ऐसे मामलों में वन संरक्षण क़ानून के तहत कार्रवाई शुरू करने के ग्राम सभा के अधिकार को वैधानिक अधिकार का दर्जा नहीं देता। यह चिंताजनक है।

विडंबना यह है कि वन संरक्षण क़ानून, 1980 में कथित प्रस्तावित संशोधनों पर टिप्पणी की सार्वजनिक नोटिस ऐसे वक़्त आई है जबकि संशोधन वास्तव में नहीं किए गए हैं और पर्यावरण मंत्रालय ने भारतीय वन अधिनियम, 1927 में सुधार के अपने ही प्रयासों को पहले ही अस्वीकार कर दिया था और बाद में भारतीय वन अधिनियम, 1927 को बदलते हुए नया ड्राफ़्ट बनाने के लिए निजी लॉ कंपनियों से संविदा पेश करने का अनुरोध किया था। वन संरक्षण क़ानून को वन अधिकार क़ानून के संगत बनाते हुए संशोधन करने की बजाय वन अधिकार क़ानून को निष्प्रभावी करने और वनों के स्वरूप को बदलाव में नियमों की पाबंदियाँ हटाने के लिए जिस तरह जल्दबाज़ी में ये संशोधन प्रस्तावित किए गए जबकि भारतीय वन अधिनियम, 1927 का काम पहले से ही चल रहा था, उसमें जल्दबाज़ी के ही लक्षण दिखते हैं। जंगलों को नियमन के दायरे से बाहर निकालने और घोषित जंगलों के बाहर की वन भूमि को वन संरक्षण क़ानून के अनुपालन से छूट देने की यह हड़बड़ी क्यों?क्या इसकी वजह यह है कि भारतीय वन अधिनियम, 1927 के अनुपालन के दायरे को सीमित कर दिया जाए और इस प्रकार भारतीय वन अधिनियम, 1927 के प्रस्तावित वापसी के पहले ही ज़्यादा-से-ज़्यादा वन भूमि को ग़ैर-वानिकी गतिविधियों के लिए खोल दिया जाए? कोई शक नहीं कि भारतीय वन अधिनियम, 1927 औपनिवेशिक क़ानून है और काफ़ी पुराना हो चुका है। इसे पहले ही जनतांत्रिक राष्ट्र हित के अनुकूल जंगल प्रशासन क़ानून से बदल दिया जाना चाहिए था। पुरानी व्यवस्था की जगह एक नई वैधानिक व्यवस्था और उसके अनुकूल नई जंगल प्रशासन व्यवस्था पहले ही तैयार की जा

चुकी है, जिसे 1992 में पारित संविधान के 73वें संशोधन (जिसे अब पार्ट IX कहा जाता है, जिसे संविधान के 11वें अनुच्छेद के साथ पढ़ा जाना चाहिए), पेसा क़ानून 1996, वन अधिकार क़ानून 1996 और भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता अधिकार अधिनियम, 2013 के आलोक में देखा जाना चाहिए।

कुल मिलाकर वन संरक्षण में प्रस्तावित संशोधन,

- वन संरक्षण क़ानून और वन अधिकार क़ानून दोनों के दायरे को सीमित करना चाहता है। इसके लिए बड़े जंगल क्षेत्र को वन संरक्षण क़ानून के दायरे से बाहर कर देना चाहता है ताकि सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के लिए वन क्षेत्र उपलब्ध हो सकें और "काम करने में आसानी" के एजेंडे को लागू किया जा सके।
- वन अधिकार क़ानून, पेसा और अनुसूचित जनजातियों और अन्य पारंपरिक जंगलवासियों के लिए किए गए संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करते हैं।
- क़ानून बनाने के पहले राय-मशविरा करने की नीति का उल्लंघन है क्योंकि राय-मशविरा के लिए ज़रूरी समय नहीं दिया गया और प्रस्ताव को सिर्फ़ अँग्रेजी भाषा में जारी किया गया और वह भी सिर्फ़ 14 बिंदुओं पर संशोधन पेश किए गए, जो अनिश्चित, अस्पष्ट और कई जगहों पर विरोधाभासी हैं, कई बार असल प्रस्ताव क्या है यह भी स्पष्ट नहीं बताया गया।
- पर्यावरण मंत्रालय ने जनजातीय कार्य मंत्रालय से भी राय-मशविरा नहीं किया, जिसके ऊपर आम तौर पर वन अधिकार के मामलों की निगरानी का ज़िम्मा है।
- निजी बागानों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से वनों को पुनर्परिभाषित करने की कोशिश की गई है, जिससे वनों की अंधाधुंध कटाई हो सकती है और पर्वावरण बिगड़ सकता है।
- वन संरक्षण क़ानून 1980 को 73वें संविधान संशोधन, पेसा क़ानून, वन अधिकार क़ानून और भूमि अर्जन और पुनर्वास क़ानून के बहुत पहले ही पारित कर लिया गया था। इसे नई जनतांत्रिक व्यवस्था के अनुकूल बनाना क़ानूनन ज़रूरी था।
- अंत में, संशोधनों के ये सारे प्रस्ताव पर्यावरण मंत्रालय के ऊपर औपनिवेशिक वन नौकरशाही की पकड़ और दबाव की ओर इशारा करते हैं ताकि वह वन संसाधनों पर औपनिवेशिक एकाधिकार को क़ायम रख सके, अब यह सब व्यवसाय के हित में किया जा रहा है न कि लोगों की भलाई के लिए।
- उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण मंत्रालय को प्रस्तावित

संशोधनों को वापस ले लेना चाहिए। उसके बदले मंत्रालय को मौजूदा क़ानूनों, ख़ासकर वन अधिकार क़ानून को लागू करने में सख़्ती दिखानी चाहिए और जंगलों की सुरक्षा, संरक्षण और स्वरूप बदलने के बारे में निर्णय प्रक्रिया का ज़िम्मा ग्राम सभा पर छोड़ देना चाहिए।

आपका
अनुगामी.

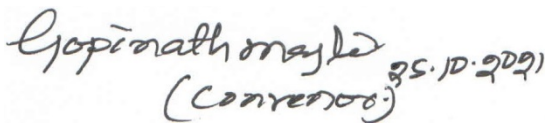

कैम्पेन फ़ॉर सर्वाइवल एंड डिग्निटी, ओडिशा

प्रतिलिपि :

श्री भूपेंद्र यादव, आदरणीय मंत्री, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार के ध्यानार्थ।
श्री अर्जुन मुंडा, आदरणीय मंत्री, जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार के ध्यानार्थ।
श्री गिरिराज सिंह, आदरणीय मंत्री, ग्रामीण विकास और पंचायती राज मंत्रालय, भारत सरकार के ध्यानार्थ।